मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ

स्वामी विवेकानन्द

भारतीय साहित्य संग्रह

वक्तव्य

मनुष्य यदि जीवन के लक्ष्य अर्थात् पूर्णत्व को प्राप्त करने का इच्छुक है तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपने मन के स्वभाव को भलीभाँति परख ले। मन की शक्तियाँ सचमुच बड़ी ही आश्चर्यजनक हैं।

स्वामी विवेकानन्दजी ने इस पुस्तक में इन शक्तियों की बड़ी अधिकारपूर्ण रीति से विवेचना की है तथा उन्हें प्राप्त करने के साधन भी बताए हैं। स्वामीजी स्वयं एक सिद्ध महात्मा थे; उन्हें उन साधनाओं का पूर्ण ज्ञान था जिनके सहारे एक साधक चरम उद्देश्य अर्थात् आत्मानुभूति प्राप्त कर सकता है।

यह सत्य है कि ये साधनाएँ भिन्न भिन्न व्यक्तियों के स्वभाव तथा उनकी प्रकृति के अनुसार अलग अलग हो सकती हैं। और इस पुस्तक में स्वामीजी ने उन साधनाओं को व्यवहार में लाने के लिए वे उपदेश तथा सुझाव दे दिए हैं जो साधक के लिए वास्तव में बड़े उपयोगी सिद्ध होंगे।

हमें विश्वास है कि इस पुस्तक से पाठकों का निश्चय ही हित होगा।

अनुक्रम

मन की शक्तियाँ

मन की शक्तियाँ
जीवन-गठन की साधनाएँ
लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के मार्ग

मन की शक्तियाँ

सारे युगों से, संसार के सब लोगों का अलौकिक घटनाओं में विश्वास चला आ रहा है। हम सभी ने अनेक अद्भुत चमत्कारों के बारे में सुना है और हममें से कुछ ने उनका स्वयं अनुभव भी किया है। इस विषय का प्रारम्भ आज मैं स्वयं देखे हुए चमत्कारों को बतलाकर करूँगा।

मैंने एक बार ऐसे मनुष्य के बारे में सुना जो किसी के मन के प्रश्न का उत्तर सुनने के पहले ही बता देता था। और मुझे यह भी बतलाया गया कि वह भविष्य की बातें भी बताता है।

मुझे उत्सुकता हुई और अपने कुछ मित्रों के साथ मैं वहाँ पहुँचा। हममें से प्रत्येक ने पूछने का प्रश्न अपने मन में सोच रखा था। ताकि गलती न हो, हमने वे प्रश्न कागज पर लिखकर जेब में रख लिये थे। ज्योंही हममें से एक वहाँ पहुँचा, त्योंही उसने हमारे प्रश्न और उनके उत्तर कहना शुरू कर दिया। फिर उस मनुष्य ने कागज पर कुछ लिखा, उसे मोड़ा और उसके पीछे मुझे हस्ताक्षर करने के लिए कहा, और बोला, "इसे पढ़ो मत, जेब में रख लो, तब तक कि मैं इसे फिर न माँगूं।" इस तरह उसने हरएक से कहा। बाद में उसने हम लोगों को हमारे भविष्य की कुछ बातें बतलायीं। फिर उसने कहा, "अब किसी भी भाषा का कोई शब्द या वाक्य तुम लोग अपने मन में सोच लो।"

मैंने संस्कृत का एक लम्बा वाक्य सोच लिया। वह मनुष्य संस्कृत बिलकुल नहीं जानता था। उसने कहा, "अब अपनी जेब का कागज निकालो।" कैसा आश्चर्य। वही संस्कृत का वाक्य उस कागज पर लिखा था। और नीचे यह भी लिखा था कि 'जो कुछ मैंने इस कागज पर लिखा है, वही यह मनुष्य सोचेगा।' और यह बात उसने एक घण्टा पहले ही लिख दी थी।

फिर हममें से दूसरे को, जिसके पास भी उसी तरह का एक दूसरा कागज था, कोई एक वाक्य सोचने को कहा गया। उसने अरबी भाषा का एक फिकरा सोचा। अरबी भाषा का जानना तो उसके लिए और भी असम्भव था। वह फिकरा था 'कुर्आन शरीफ' का। लेकिन मेरा मित्र क्या देखता है कि वह भी कागज पर लिखा है।

हममें से तीसरा था वैद्य। उसने किसी जर्मन भाषा की वैद्यकीय पुस्तक का वाक्य अपने मन में सोचा। उसके कागज पर वह वाक्य भी लिखा था।

यह सोचकर कि कहीं पहले मैंने धोखा न खाया हो, कई दिनों बाद में फिर दूसरे मित्रों को साथ लेकर वहाँ गया। लेकिन इस बार भी उसने वैसी ही आश्चर्यजनक सफलता पायी।

एक बार जब मैं हैदराबाद में था, तो मैंने एक ब्राह्मण के विषय में सुना। यह मनुष्य न जाने कहाँ से कई वस्तुएँ पैदा कर देता था। वह उस शहर का व्यापारी था, और ऊँचे खानदान का था। मैंने उससे अपने चमत्कार दिखलाने को कहा। इस समय ऐसा हुआ कि वह मनुष्य बीमार था। भारतवासियों में यह विश्वास है कि अगर कोई पवित्र मनुष्य किसी के सिर पर हाथ रख दे, तो उसका बुखार उतर जाता है।

यह ब्राह्मण मेरे पास आकर बोला, "महाराज, आप अपना हाथ मेरे सिर पर रख दे जिससे मेरा बुखार भाग जाय।"

मैंने कहा, "ठीक है, परन्तु तुम हमें अपना चमत्कार दिखलाओ।"

वह राजी हो गया। उसकी इच्छानुसार मैंने अपना हाथ उसके सिर पर रखा और बाद में वह अपना वचन पूरा करने को आगे बढा। वह केवल एक धोती पहने था। उसके अन्य सब कपड़े

हमने अपने पास ले लिये थे। अब मैंने उसे केवल एक कम्बल ओढ़ने के लिए दिया, क्योंकि ठण्ड के दिन थे, और उसे एक कोने में बिठा दिया। पचास आँखें उसकी ओर ताक रही थीं।

उसने कहा, "अब आप लोगों को जो कुछ चाहिए, वह कागज पर लिखिये।"

हम सब लोगों ने उन फलों के नाम लिखे, जो उस प्रान्त में पैदा तक न होते थे- अंगूर के गुच्छे, सन्तरे इत्यादि। और हमने वे कागज उसके हाथ में दे दिये। कैसा आश्चर्य। उसके कम्बल में से अंगूर के गुच्छे तथा सन्तरे आदि इतनी संख्या में निकले कि अगर वजन किया जाता, तो वे सब उस आदमी के वजन से दुगने होते।

उसने हमसे उन फलों को खाने के लिए कहा। हममें से कुछ लोगों ने यह सोचकर कि शायद यह जादू-टोना हो, खाने से इन्कार किया। लेकिन जब उस ब्राह्मण ने ही खुद खाना शुरु कर दिया, तो हमने भी खाये। वे सब फल खाने योग्य ही थे।

अन्त में उसने गुलाब के ढेर निकाले। हरएक फूल पूरा खिला था। पंखुड़ियों पर ओस के बिन्दु थे। कोई भी फूल न तो टूटा था और न दबकर खराब ही हुआ था। और उसने ऐसे एक-दो नहीं, वरन् ढेर-के ढेर निकाले। जब मैंने पूछा कि यह कैसे किया, तो उसने कहा, "यह सिर्फ हाथ की सफाई है।"

यह चाहे जो कुछ हो, परन्तु केवल 'हाथ की सफाई' होना तो असम्भव था। इतनी बड़ी संख्या में वह वे चीजें कहाँ से पा सकता था?

हाँ, तो मैंने इसी तरह की अनेक बातें देखीं। भारतवर्ष में घूमते समय भिन्न-भिन्न स्थानों में तुम्हें ऐसी सैकड़ों बातें दिखेंगी। ये चमत्कार सभी देशों में हुआ करते हैं। इस देश में भी इस तरह के आश्चर्यकारक काम देखोगे। हाँ, यह सच है कि इनमें अधिकांश धोखेबाजी होती हैं। परन्तु जहाँ तुम धोखेबाजी देखते हो, वहाँ तुम्हें यह भी मानना पड़ता है कि यह किसी की नकल है। कहीं-न कहीं कोई सत्य होना ही चाहिए, जिसकी यह नकल की जा रही है। अविद्यमान वस्तु की कोई नकल नहीं कर सकता। किसी विद्यमान वस्तु की ही नकल की जा सकती है।

प्राचीन समय में हजारों वर्ष पूर्व ऐसी बातें आज की अपेक्षा और भी अधिक परिमाण में हुआ करती थीं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जब किसी देश की आबादी घनी होने लगती है, तो मानसिक बल का ह्रास होने लगता है। जो देश विस्तृत है और जहाँ लोग बिरले बसे होते हैं, वहाँ शायद मानसिक बल अधिक होता है। विश्लेषण-प्रिय होने के कारण हिन्दुओं ने इन विषयों को लेकर उनके सम्बन्ध में अन्वेषण किया और वे कुछ मौलिक सिद्धान्तों पर जा पहुँचे, अर्थात् उन्होंनें इन बातों का एक शास्त्र ही बना डाला। उन्होंने यह अनुभव किया कि ये बातें यद्यपि असाधारण हैं, तथापि अनैसर्गिक नहीं हैं। अनैसर्गिक नाम की वस्तु ही नहीं है। ये बातें भी ठीक वैसी ही नियमबद्ध हैं, जैसी भौतिक जगत् की अन्यान्य बातें। यह कोई निसर्ग की लहर नहीं कि एक मनुष्य इन सामर्थ्यों को साथ लेकर जन्म लेता हो।

इन शक्तियों के सम्बन्ध में नियमित रूप से अध्ययन किया जा सकता है, इनका अभ्यास किया जा सकता है और ये शक्तियाँ अपने में उत्पन्न की जा सकती हैं। इस शास्त्र को वे लोग 'राजयोग' कहते हैं। भारतवर्ष में ऐसे हजारों मनुष्य है, जो इस शास्त्र का अध्ययन करते हैं। और यह सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए दैनिक उपासना का एक अंग बन गया है।

वे लोग जिस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं, वह यह है कि यह सारा अद्भुत सामर्थ्य मनुष्य के मन में अवस्थित है, मनुष्य का मन समष्टि मन का अंश मात्र है। प्रत्येक मन दूसरे प्रत्येक मन से

संलग्न है। औऱ प्रत्येक मन, वह चाहे जहाँ रहे, सम्पूर्ण विश्व के व्यापार में प्रत्यक्ष भाग ले रहा है।

क्या तुम लोगों ने विचार-संक्रमण (Thoughts-transference) का चमत्कार देखा है?

यहाँ एक मनुष्य कुछ विचार करता है और वह विचार अन्यत्र किसी दूसरे मनुष्य में प्रगट हो जाता है। एक मनुष्य अपने विचार दूसरे मनुष्य के पास भेजता है, इस दूसरे मनुष्य को यह मालूम हो जाता है कि इस तरह का सन्देश उसके पास आ रहा है। वह उस सन्देश को ठीक उसी रूप में ग्रहण करता है, जिस रूप में वह भेजा गया था। पूर्वसाधनाओं से यह बात सिद्ध होती है। यह केवल आकस्मिक घटना नहीं है। दूरी के कारण कुछ अन्तर नहीं पड़ता। यह सन्देश उस दूसरे मनुष्य तक पहुँच जाता है और वह दूसरा मनुष्य उसे समझ लेता है।

अगर तुम्हारा मन एक स्वतन्त्र वस्तु होता जो वहाँ विद्यमान है, और मेरा मन एक स्वतन्त्र वस्तु होता जो यहाँ विद्यमान है, और इन दोनों मनों में यदि कोई सम्बन्ध न होता, तो मेरे विचार तुम्हारे पास कैसे पहुँच पाते?

सर्वसाधारण व्यवहार में, मेरा विचार सीधा तुम्हारे पास नहीं पहुँचता अपितु प्रथम मेरे विचार को आकाशतत्त्व के स्पन्दनों में परिणत होना पड़ता है। ये स्पंदन फिर तुम्हारे मस्तिष्क में पहुँचते हैं। वहाँ फिर से इन स्पन्दनों का तुम्हारे अपने विचार में रूपान्तर होता है और इस तरह मेरा विचार तुम्हारे पास पहुँचता है।

यहाँ पहले विचार विश्लेष्ट होकर आकाशतत्त्व में मिल जाता है और फिर उसी का वहाँ संश्लेषण हो जाता है- इस तरह का चक्राकार कार्यक्रम चलता है। परन्तु विचार-संक्रमण में इस तरह की कोई चक्राकार क्रिया नहीं होती, इसमें मेरा विचार सीधा सीधा तुम्हारे पास पहुँच जाता है।

इससे स्पष्ट है कि मन एक अखण्ड वस्तु है, जैसा कि योगी कहते हैं। मन विश्वव्यापी है। तुम्हारा मन, मेरा मन, ये सब विभिन्न मन उस समष्टि-मन के अंश मात्र हैं, मानो समुद्र पर उठनेवाली छोटी छोटी लहरें; और इस अखण्डता के कारण ही हम अपने विचारों को एकदम सीधे, बिना किसी माध्यम के आपस में संक्रमित कर सकते हैं।

हमारे आसपास दुनिया में क्या हो रहा है, यह तो तुम देख ही रहे हो।

अपना प्रभाव चलाना यही दुनिया है। हमारी शक्ति का कुछ अंश तो हमारे शरीर-धारण के उपयोग में आता है, और शेष प्रत्येक अंश दूसरों पर अपना प्रभाव डालने में रात दिन व्यय होता रहता है। हमारे शरीर, हमारे गुण, हमारी बुद्धि तथा हमारा आत्मिक बल- लगातार दूसरों पर प्रभाव डालते आ रहे हैं। इसी प्रकार, उलटे रूप में, दूसरों का प्रभाव हम पर पड़ता चला आ रहा है। हमारे आसपास यही चल रहा है।

एक प्रत्यक्ष उदाहरण लो। एक मनुष्य तुम्हारे पास आता है, वह खूब पढ़ा लिखा है, इसकी भाषा भी सुन्दर है, वह तुमसे एक घण्टा बात करता है, फिर भी वह अपना असर नहीं छोड़ जाता।

दूसरा मनुष्य आता है। वह इने-गिने शब्द बोलता है। शायद वे भी व्याकरणशुद्ध और व्यस्थित नहीं होते, परन्तु फिर भी वह खूब असर कर जाता है।

यह तो तुममें से बहुतों ने अनुभव किया है। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य पर जो प्रभाव पड़ता है, वह केवल शब्दों द्वारा ही नहीं होता। शब्द ही नहीं, विचार भी शायद प्रभाव का एक-तृतीयांश ही उत्पन्न करते होंगे, परन्तु शेष दो तृतीयांश प्रभाव तो उसके व्यक्तित्व का ही होता है। जिसे तुम वैयक्तिक आकर्षण कहते हो, वही प्रकट होकर तुम पर अपना असर डाल देता है।

प्रत्येक कुटुम्ब में एक मुख्य संचालक होता है। इनमें से कोई कोई संचालक घर चलाने में

सफल होते हैं, परन्तु कोई नहीं। ऐसा क्यों? जब हमें असफलता मिलती है, तो हम दूसरों को कोसते हैं। ज्योंही मुझे असफलता मिलती है, त्योही मैं कह उठता हूँ कि अमुक-अमुक मेरे अपयश के कारण हैं। अपयश आने पर मनुष्य अपनी कमजोरी और अपने दोष स्वीकार करना नहीं चाहता। प्रत्येक व्यक्ति किसी मनुष्य पर किसी वस्तु पर, और अन्तत: दुर्दैव पर मढ़ना चाहता है। जब घर का प्रमुख कर्ता सफलता प्राप्त न करे सके, तो उसे अपने-आप से यह प्रश्न पूछना चाहिए कि कुछ लोग अपना घर किस प्रकार अच्छी तरह चला सकते हैं तथा दूसरे क्यों नहीं। तब तुम्हें पता चलेगा कि यह अन्तर उस मनुष्य के ही कारण है– उस मनुष्य के व्यक्तित्व के कारण ही यह फर्क पड़ता है।

मनुष्य- जाति के बड़े-बड़े नेताओं की बात यदि ली जाय, तो हमें सदा यही दिखलायी देगा कि उनका व्यक्तित्व ही उनके प्रभाव का कारण था। अब बड़े-बड़े प्राचीन लेखक और दार्शनिकों की बात लो। सच पूछो तो असल और सच्चे विचार उन्होंने हमारे सम्मुख कितने रखे हैं? गतकालीन नेताओं ने जो कुछ लिख छोड़ा है उसका विचार करो; उनकी लिखी हुई पुस्तकों को देखो और प्रत्येक का मूल्य आँको। असल, नये और स्वतन्त्र विचार, जो अभी तक इस संसार में सोचे गये हैं केवल मुट्ठी भर ही हैं। उन लोगों ने जो विचार हमारे लिए छोड़े हैं, उनको उन्हीं की पुस्तकों में से पढ़ो तो वे हमें कोई बहुत बड़े नहीं प्रतीत होते। परन्तु फिर भी हम यह जानते हैं कि अपने जमाने में वे बहुत बड़े हो गये हैं। इसका कारण क्या है? वे जो बहुत बड़े प्रतीत होते थे, वह केवल उनके सोचे हुए विचारों या उनकी लिखी हुई पुस्तकों के कारण नहीं था, और न उनके दिये हुए भाषणों के कारण ही था, वरन् किसी एक दूसरी ही बात के कारण, जो अब निकल गयी है, और वह था उनका व्यक्तित्व।

जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, व्यक्तित्व दो-तृतीयांश होता है और शेष एक-तृतीयांश होता है- मनुष्य की बुद्धि और उसके कहे हुए शब्द।

सच्चा मनुष्यत्व या उसका व्यक्तित्व ही वही वस्तु है, जो हम पर प्रभाव डालती है। हमारे कर्म हमारे व्यक्तित्व की बाह्य अभिव्यक्ति मात्र है। प्रभावी व्यक्तित्व कर्म के रूप से प्रकट होगा ही- कारण के रहते हुए कार्य का आविर्भाव अवश्यम्भावी है।

सम्पूर्ण शिक्षा तथा समस्त अध्ययन का एकमेव उद्देश्य है इस व्यक्तित्व को गढ़ना। परन्तु हम यह न करके केवल बहिरंग पर ही पानी चढ़ाने का सदा प्रयत्न किया करते हैं। जहाँ व्यक्तित्व का ही अभाव है, वहाँ सिर्फ बहिरंग पर पानी चढ़ाने का प्रयत्न करने से क्या लाभ? सारी शिक्षा का ध्येय है मनुष्य का विकास। वह अन्तर्भाव वह व्यक्तित्व, जो अपना प्रभाव सब पर डालता है, जो अपने संगियों पर जादू-सा कर देता है, शक्ति का एक महान् केन्द्र है, और जब यह शक्तिशाली अन्तर्मानव तैयार हो जाता है, तो वह जो चाहे कर सकता है। यह व्यक्तित्व जिस वस्तु पर अपना प्रभाव डालता है, उसी वस्तु को कार्यशील बना देता है।

हम देखते हैं कि यद्यपि यह बात सच है, तथापि कोई भी भौतिक सिद्धान्त, जो हमें ज्ञात है, इसे नहीं समझा सकता। रासायनिक या पदार्थ-वैज्ञानिक ज्ञान इसका विशदीकरण कैसे कर सकता है? कितनी प्राणवायु (Oxygen), कितनी उदजनवायु (Hydrogen), कितना कोयला (Carbon) या कितने परमाणु और उनकी कितनी विभिन्न अवस्थाएँ, उनमें विद्यमान कितने कोष इत्यादि इस गूढ़ व्यक्तित्व का स्पष्टीकरण कर सकते हैं? फिर भी हम देखते हैं कि यह व्यक्तित्व एक सत्य है, इतना ही नहीं, बल्कि यही प्रकृत मानव है। यही मनुष्य की सब क्रियाओं को

अनुप्राणित करता है सभी पर प्रभाव डालता है, संगियों को कार्य में प्रवृत्त करता है तथा उस व्यक्ति के लय के साथ विलीन हो जाता है। उसकी बुद्धि, उसकी पुस्तकें और उसके किये हुए कार्य-ये सब तो केवल पीछे रहे हुये कुछ चिन्ह मात्र हैं। इस बात पर विचार करो। इन महान् धर्माचार्यों की बड़े-बड़े दार्शनिकों के साथ तुलना करो।

इन दार्शनिकों ने बड़ी आश्चर्यजनक पुस्तकें लिख डाली हैं, परन्तु फिर भी शायद ही किसी के अन्तर्मानव को - व्यक्तित्व को उन्होंने प्रभावित किया हो। इसके विपरीत, महान् धर्माचार्यों को देखो, उन्होंने अपने काल में सारे देश को हिला दिया था।

व्यक्तित्व ही था वह, जिसने यह अन्तर पैदा किया। दार्शनिकों का वह व्याक्तित्व, जो असर पैदा करता है, किंचिन्मात्र होता है, और महान् धर्मसंस्थापकों का वही व्यक्तित्व प्रचण्ड होता है। दार्शनिकों का व्यक्तित्व बुद्धि पर असर करता है और धर्मसंस्थापकों का जीवन पर।

पहला मानो केवल एक रासायनिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कुछ रासायनिक उपादान एकत्रित होकर आपस में धीरे-धीरे संयुक्त हो जाते हैं और अनुकूल परिस्थिति होने से या तो उनमें से प्रकाश की दीप्ति प्रकट होती है, या वे असफल ही हो जाते हैं। दूसरा एक जलती हुई मशाल के सदृश है, जो शीघ्र ही एक के बाद दूसरे को प्रज्वलित करता है।

योगशास्त्र यह दावा करता है कि उसने उन नियमों को ढूँढ़ निकाला है, जिनके द्वारा इस व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है। इन नियमों तथा उपायों की ओर ठीक-ठीक ध्यान देने से मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और उसे शक्तिशाली बना सकता है। बड़ी-बड़ी व्यावहारिक बातों में यह एक महत्त्व की बात है और समस्त शिक्षा का यही रहस्य है। इसकी उपयोगिता सार्वदेशीय है। चाहे वह गृहस्थ हो, चाहे गरीब, अमीर, व्यापारी या धार्मिक - सभी के जीवन में व्यक्तित्व को शक्तिशाली बनाना ही एक महत्त्व की बात है। ऐसे अनेक सूक्ष्म नियम हैं, जो हम जानते हैं, इन भौतिक नियमों से अतीत हैं। मतलब यह कि भौतिक जगत् मानसिक जगत् या आध्यात्मिक जगत् - इस तरह की कोई नितान्त स्वतन्त्र सत्ताएँ नहीं हैं। जो कुछ है, सब एक तत्त्व है। या हम यों कहेंगे कि यह सब एक ऐसी वस्तु है, जो यहाँ पर मोटी है और जैसे-जैसे यह ऊँची चढ़ती है, वैसे-ही-वैसे वह सूक्ष्मतर होती जाती है; सूक्ष्मतम को हम आत्मा कहते हैं और स्थूलतम को शरीर। और जो कुछ छोटे परिमाण में इस शरीर में है, वही बड़े परिमाण में विश्व में है। जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है। यह हमारा विश्व ठीक इसी प्रकार का है। बहिरंग में स्थूल घनत्व है और जैसे-जैसे यह ऊँचा चढ़ता है, वैसे-वैसे वह सूक्ष्मतर होता जाता है और अन्त में परमेश्वर-रूप बन जाता है।

हम यह भी जानते हैं कि सबसे अधिक शक्ति सूक्ष्म में है, स्थूल में नहीं। एक मनुष्य भारी वजन उठाता है। उसके स्नायु फूल उठते हैं। और सम्पूर्ण शरीर पर परिश्रम के चिह्न दिखने लगते हैं। हम समझते हैं कि स्नायु बहुत शक्तिशाली वस्तु है। परन्तु वास्तव में जो स्नायुओं को शक्ति देते हैं, वे तो धागे के समान पतली तन्त्रिकाएँ (Nerves) हैं। जिस क्षण इन तन्त्रिकाएँ में से एक का भी स्नायुओं से सम्बन्ध टूट जाता है, उसी क्षण वे स्नायु बेकाम हो जाते हैं। ये छोटी-छोटी तन्त्रिकाएँ किसी अन्य सूक्ष्मतर वस्तु से अपनी शक्ति ग्रहण करती हैं, और वह सूक्ष्मतर फिर अपने से भी अधिक सूक्ष्म विचारों से शक्ति ग्रहण करती है। इसी तरह यह क्रम चलता रहता है। इसलिए वह सूक्ष्म तत्त्व ही है, जो शक्ति का अधिष्ठान है।

स्थूल में होनेवाली हलचल हम अवश्य देख सकते हैं, परन्तु सूक्ष्म में होनेवाली हलचल हम

देख नहीं सकते। जब स्थूल वस्तुएँ हलचल करती हैं, तो हमें उसका बोध होता है और इसलिए हम स्वाभाविक ही हलचल का सम्बन्ध स्थूल से जोड़ देते हैं; परन्तु वास्तव में सारी शक्ति सूक्ष्म में ही है। सूक्ष्म में होनेवाली हलचल हम देख नहीं सकते। शायद इसका कारण यह है कि वह हलचल इतनी तीव्र होती है कि हम उसका अनुभव ही नहीं कर सकते। परन्तु यदि कोई शास्त्र या कोई शोध इन सूक्ष्म शक्तियों के ग्रहण करने में सहायता दे, तो यह व्यक्त विश्व ही, जो इन शक्तियों का परिणाम है, हमारे अधीन हो जायगा। पानी का एक बुलबुला झील के तल से निकलता है, वह ऊपर आता है, परन्तु हम उसे देख नहीं सकते जब तक कि वह सतह पर आकर फूट नहीं जाता। इसी तरह विचार अधिक विकसित हो जाने पर या कार्य में परिणत हो जाने पर ही देखे जा सकते हैं। हम सदा यही कहा करते हैं कि हमारे कर्मों पर हमारे विचारों पर हमारा अधिकार नहीं चलता। यह अधिकार हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं? हम विचारों को मूल में ही अगर अधीन कर सकें, तो इन सूक्ष्म हलचलों पर हमारा प्रभुत्व चल सकेगा। विचारों को कार्य में परिणत होने के पहले ही जब हम अधीन कर लेंगे, तभी सब पर हमारा प्रभुत्व चल सकेगा।

अब, अगर ऐसा कोई उपाय हो, जिसके द्वारा हम कारणभावों का अर्थात् इन सूक्ष्म शक्तियों का पृथक्करण कर सकें, उन्हें समझ सकें, और अन्त में अपने अधीन कर सकें, तो हम स्वयं पर अपना अधिकार चला सकेंगे। और जिस मनुष्य का मन उसके अधीन होगा, निश्चय ही वह दूसरों के मनों को भी अपने अधीन कर सकेगा। यही कारण है कि पवित्रता तथा नीतिमत्ता सदा के लिए धर्म के विषय बने हुए हैं। पवित्र, सदाचारी मनुष्य स्वयं पर अपना अधिकार चलाता है। हम सब के मन उस एक ही समष्टिमन के अंश मात्र हैं। जिसे एक ढेले का ज्ञान हो गया, उसने दुनिया की सारी मिट्टी जान ली। जो अपने मन को जानता है और स्व-अधीन रख सकता है, वह दूसरों के मनों का रहस्य भी पहचानता है और उन पर अपना प्रभुत्व चला सकता है।

हम अपने भौतिक दु:खों का अधिकांश भाग दूर कर सकते हैं, अगर हम इन सूक्ष्म कारणों पर अपना अधिकार चला सकें। हम अपनी चिन्ताओं को दूर कर सकते हैं, अगर यह सूक्ष्म हलचल हमारे अधीन हो जाय। अनेक अपयश टाले जा सकते हैं, अगर हम इन सूक्ष्म शक्तियों को अपने अधीन कर लें। यहाँ तक तो उपयोगिता के बारे में हुआ; लेकिन इसके परे और भी कुछ उच्चतर साध्य है।

अब मैं तुम्हें एक विचारप्रणाली बतलाता हूँ। उसके सम्बन्ध में मैं अभी विवाद उपस्थित न करूँगा, केवल सिद्धान्त ही तुम्हारे सामने रखूँगा। प्रत्येक मनुष्य अपने बाल्यकाल में ही उन उन अवस्थाओं को पार कर लेता है, जिनमें से होकर उसका समाज गुजरा है, अन्तर केवल इतना है कि समाज को हजारों वर्ष लग जाते हैं जब कि बालक कुछ वर्षों में ही उनमें से हो गुजरता है। बालक प्रथम जंगली मनुष्य की अवस्था में होता है - वह तितली को अपने पैरों तले कुचल डालता है। आरम्भ में बालक अपनी जाति के जंगली पूर्वजों-सा होता है। जैसे-जैसे वह बढ़ता है, अपनी जाति की विभिन्न अवस्थाओं को पार करता जाता है, जब तक कि वह अपनी जाति की उन्नतावस्था तक पहुँच नहीं जाता। अन्तर यही है कि वह तेजी से और जल्दी-जल्दी पार कर लेता है। अब सम्पूर्ण प्राणि-जगत् और मनुष्य तथा निम्न स्तर के प्राणियों की समष्टि को एक जाति मान लो। एक ऐसा ध्येय है, जिसकी ओर यह समष्टि बढ़ रही है। उसे स्तर को हम पूर्णत्व नाम दे दें। कुछ पुरुष ऐसे होते हैं, जो मानवसमाज के भविष्यकालीन सम्पूर्ण विकास की कल्पना पहले कर लेते हैं। सम्पूर्ण मानवसमाज जब तक उस पूर्णत्व को न पहुँचे, तब तक राह देखते रहने

और पुन:-पुन: जन्म लेने की अपेक्षा, वे जीवन के कुछ ही वर्षों में इन सब अवस्थाओं का अतिक्रमण कर पूर्णता की ओर अग्रसर हो जाते हैं। और हम जानते हैं कि इन अवस्थाओं में से हम तेजी से आगे बढ़ सकते हैं, अगर हम केवल आत्मवंचना न करें। असंस्कृत मनुष्यों को अगर हम एक द्वीप पर छोड़ दें और उन्हें कठिनता से पर्याप्त खाने, ओढ़ने तथा रहने को मिले, तो वे धीरे-धीरे उन्नत हो संस्कृति की एक-एक सीढ़ी चढ़ते जायेंगे। हम यह भी जानते हैं कि अन्य विशेष साधनों द्वारा भी इस विकास की गति बढ़ायी जा सकती है। क्या हम वृक्षों के बढ़ने में मदद नहीं करते? यदि वे निसर्ग पर छोड़ दिये जाते, तो भी वे बढ़ते, अन्तर यही है कि उन्हें अधिक समय लगता। निसर्गत: लगनेवाले समय से कम समय में ही उनकी बाढ़ होने के लिए हम मदद पहुँचाते हैं। कृत्रिम साधनों द्वारा वस्तुओं की बाढ़ द्रुततर करना - यही हम निरन्तर करते आये हैं। तो फिर हम मनुष्य का विकास शीघ्रतर क्यों नहीं कर सकते? समस्त जाति के विषय में हम ऐसा कर सकते हैं। परदेशों में प्रचारक क्यों भेजे जाते हैं? इसलिए कि इन उपायों द्वारा जाति को हम शीघ्रतर उन्नत कर सकते हैं। तो, अब क्या हम व्यक्ति का विकास शीघ्रतर नहीं कर सकते? अवश्य कर सकते हैं। क्या हम इस विकास की शीघ्रता की कोई मर्यादा बाँध सकते हैं? यह हम नहीं कह सकते कि एक जीवन में मनुष्य कितनी उन्नति कर सकता है। ऐसा कहने के लिए तुम्हें कोई आधार नहीं कि मनुष्य केवल इतनी ही उन्नति कर सकता है, अधिक नहीं। अनुकूल परिस्थिति से उसका विकास आश्चर्यजनक शीघ्रता से हो सकता है। तो फिर, क्या मनुष्य के पूर्ण विकसित होने के पूर्व उसके विकास की गति की कोई मर्यादा हो सकती है।

अतएव इस सब का तात्पर्य क्या है? यही कि मनुष्य इस जन्म में ही पूर्णत्व-लाभ कर सकता है, और उसे उसके लिए करोड़ो वर्ष तक इस संसार में आवागमन की आवश्यकता नहीं। और यही बात योगी कहते है कि सब बड़े अवतार तथा धर्मसंस्थापक ऐसे ही पुरुष होते हैं; उन्होंने इस एक ही जीवन में पूर्णत्व प्राप्त कर लिया है। दुनिया के इतिहास के सब कालों में इस तरह के मनुष्य जन्म लेते आये हैं। अभी कुछ ही दिन पूर्व एक ऐसे महापुरुष ने जन्म लिया था, जिन्होंने मानवसमाज के सम्पूर्ण जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का अनुभव अपने इसी जीवन में कर लिया था और जो इसी जीवन में पूर्णत्व तक पहुँच गये थे। परन्तु विकास की यह शीघ्र गति भी कुछ नियमों के अनुसार होनी चाहिए। अब ऐसी कल्पना करो कि इन नियमों को हम जान सकते हैं, उनका रहस्य समझ सकते हैं और अपनी आवश्यकताएँ पूर्ण करने के लिए उसको उपयोग में ला सकते हैं, तो यह स्पष्ट है कि इससे हमारा विकास होगा। हम यदि अपनी शीघ्रतर बाढ़ करें, शीघ्रतर अपना विकास करें, तो इस जीवन में ही हम पूर्ण विकसित हो सकते है। हमारे जीवन का उदात्त अंश यही है, और मनोविज्ञान तथा मन की शक्तियों का अभ्यास इस पूर्ण विकास को ही अपना ध्येय मानता है। पैसे और भौतिक वस्तुएँ देकर दूसरों की सहायता करना तथा उन्हें सुगमता से जीवन यापन करना सिखलाना – ये सब तो जीवन की केवल गौण बाते हैं।

मनुष्य को पूर्ण विकसित बनाना - यही इस शास्त्र का उपयोग है। युगानुयुग प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। जैसे एक काठ का टुकड़ा केवल खिलौना बन समुद्र की लहरों द्वारा इधर-उधर फेंक दिया जाता है, उसी प्रकार हम भी प्रकृति के जड़नियमों के हाथों खिलौना बनें, यह आवश्यक नहीं। यह शास्त्र चाहता है कि तुम शक्तिशाली बनो, उन्नति-कार्य अपने ही हाथ में लो, प्रकृति के भरोसे मत छोड़ो और इस छोटे-से जीवन के उस पार हो जाओ। यही वह उदात्त ध्येय है।

मनुष्य के ज्ञान, शक्ति और सुख की वृद्धि होती जा रही है। हम एक जाति के रूप में लगातार

उन्नति करते जा रहे हैं। हम देखते हैं कि यह सच है, बिलकुल सच है। क्या यह प्रत्येक व्यक्ति के विषय में भी सत्य है? हाँ कुछ अंश तक सच है। किन्तु फिर वही प्रश्न उठता है कि इसकी सीमा-रेखा कौनसी है? मैं तो केवल कुछ ही गज दूरी तक देख सकता हूँ, लेकिन मैंने ऐसा मनुष्य देखा है, जो आँख बन्द कर लेता है और फिर भी बता देता है कि दूसरे कमरे में क्या हो रहा है। अगर तुम कहो कि हम इस पर विश्वास नहीं करते, तो शायद तीन सप्ताह के अन्दर वह मनुष्य तुममें भी वैसा ही सामर्थ्य उत्पन्न कर देगा। यह किसी भी मनुष्य को सिखलाया जा सकता है। कुछ मनुष्य तो सिर्फ पाँच मिनट के अन्दर ही यह जानना सीख सकते हैं कि दूसरे मनुष्य के मन में क्या चल रहा है। ये बातें प्रत्यक्ष कर दिखलायी जा सकती हैं।

अब यदि यह बात सच है, तो सीमा-रेखा कहाँ पर खींची जा सकती है? अगर मनुष्य कोने में बैठे हुए दूसरे मनुष्य के मन में क्या चल रहा है यह जान सकता है, तो वह दूसरे कमरे मे बैठे रहने पर भी क्यों न जान सकेगा, और इतना ही क्यों, कहीं पर भी बैठकर क्यों न जान सकेगा? हम यह नहीं कह सकते कि ऐसा क्यों नहीं होगा हम यह कहने का साहस नहीं कर सकते कि यह असम्भव है। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि हम नहीं जानते यह कैसे सम्भव है। ऐसी बातें होना असम्भव है, ऐसा कहने का भौतिक वैज्ञानिक को कोई अधिकार नहीं। वे सिर्फ कह सकते है, 'हम नहीं जानते।' विज्ञान का काम केवल इतना है कि घटनाओं को एकत्रित कर उन पर सिद्धान्त बाँधे, अनुस्यूत नियमों को निकाले और सत्य का विधान करे। परन्तु यदि हम घटनाओं का ही इन्कार करने लगें, तो विज्ञान बन कैसे सकता है।

मनुष्य कितनी शक्ति सम्पादन कर सकता है, इसका कोई अन्त नहीं। भारतीय मन की यही विशेषता है कि जब किसी एक वस्तु में उसे रुचि उत्पन्न हो जाती है, तो वह उसी में मग्न हो जाता है, और दूसरी बातों को भूल जाता है। तुम जानते हो कि कितने शास्त्रों का उद्गम भारतवर्ष में हुआ है। गणितशास्त्र का आरम्भ वहाँ ही हुआ। आज भी तुम लोग संस्कृत अंक गणनापद्धति के अनुसार एक, दो, तीन इत्यादि शून्य तक गिनते हो, और तुमको यह भी मालूम है कि बीजगणित का उदय भारत में ही हुआ। उसी तरह न्यूटन का जन्म होने के हजारों वर्ष पूर्व ही भारतीयों को गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त अवगत था।

इस विशेषता की ओर जरा ध्यान दो। भारतीय इतिहास के एक समय में भारतवासियों का चित्त मानव और मानवी मन के अभ्यास में ही डूब गया था। और यह विषय अत्यन्त आकर्षक था, क्योंकि अपनी ध्येय- वस्तु प्राप्त करने का उन्हें यह सुलभतम तरीका लगा। इस समय भारतवासियों का ऐसा दृढ़ निश्चय हो गया था कि विशिष्ट नियमों के अनुसार परिचालित होने से मन कोई भी कार्य कर सकता है। और इसीलिए मन की शक्तियाँ ही उनके अध्ययन का विषय बन गई थीं।

जादू, मन्त्र-तन्त्र तथा अन्यान्य सिद्धियाँ कोई असाधारण बातें नहीं हैं; ये भी उतनी ही सरलता से सिखलाई जा सकती हैं, जितना कि इसके पहले भौतिक शास्त्र सिखलाये गये थे। इन बातों पर उन लोगों का इतना दृढ़ विश्वास हो गया कि भौतिक शास्त्र करीब-करीब मरे-से हो गये। यही एक बात थी जिसने उनका मन खींच रखा था।

योगियों के विभिन्न सम्प्रदाय अनेक प्रकार के प्रयोग करने लगे। कुछ लोगों ने प्रकाश के सम्बन्ध में प्रयोग किये और यह जानना चाहा कि विभिन्न वर्णों की किरणों का शरीर पर कौनसा प्रभाव पडता है। वे विशिष्ट रंग का कपड़ा पहनते थे, विशिष्ट रंग में वास करते थे और विशिष्ट

रंग के ही अन्न खाते थे। इस तरह सब प्रकार के प्रयोग किये जाने लगे। दूसरों ने अपने कान बन्द कर या खुले रखकर ध्वनि के विषय में प्रयोग करना आरम्भ किया, और अन्य योगियों ने घ्राणेंद्रिय के सम्बन्ध में।

सभी का ध्येय एक था - वस्तु के मूल अथवा सूक्ष्म कारण तक किसी प्रकार पहुँचना; और उनमें से कुछ लोगों ने सचमुच ही आश्चर्यदनक सामर्थ्य प्रकट किया। बहुतों ने आकाश में विचरने और उड़ने का प्रयत्न किया। मैं एक बड़े पाश्चात्य विद्वान की बतलायी हुई एक कथा कहूँगा।

सीलोन के गव्हर्नर ने, जिन्होंने यह घटना प्रत्यक्ष देखी थी, उससे कही थी। एक लड़की उपस्थित की गयी, और वह पलथी मारकर स्टूल पर बैठ गयी। स्टूल लकड़ियों को आड़ी-टेढ़ी जमाकर बना दिया गया था। कुछ देर उसके उस स्थिति में बैंठते के पश्चात् वह तमाशा दिखानेवाला मनुष्य धीरे-धीरे एक एक करके लकड़ियाँ हटाने लगा और वह लड़की हवा में अधर में ही लटकती रह गयी। गवर्नर ने सोचा कि इसमें कोई चालाकी है, इसलिए उन्होंने तलवार खींची और तेजी से उस लड़की के नीचे से घुमायी। परन्तु लड़की के नीचे कुछ भी नहीं था। अब कहो, यह क्या है? यह कोई जादू न था और न कोई असाधारण बात ही थी। यही वैशिष्टय है। कोई भी भारतीय ऐसा न कहेगा कि इस तरह की घटना नहीं हो सकती। हिन्दू के लिए यह एक साधारण बात है। तुम जानते हो, जब हिन्दुओं को शत्रुओं से युद्ध करना होता है, तो वे क्या कहते है, "हमारा एक योगी तुम्हारे झुण्ड-के–झुण्ड मार भगायेगा।" उस राष्ट्र का यह दृढ़ विश्वास है। हाथ या तलवार में ताकत कहाँ? ताकत तो है आत्मा में।

यदि यह सच है, तो मन के लिए यह प्राणपण से प्रयत्न करने के लिए काफी प्रलोभन है, परन्तु कोई बड़ा यश सम्पादन करना जिस तरह प्रत्येक विज्ञान में कठिन है, उसी तरह इस क्षेत्र में भी। इतना ही नहीं, बल्कि यहाँ तो और भी अधिक कठिन है। फिर भी अनेक लोग समझते है कि ये शक्तियाँ सुगमता से प्राप्त की जा सकती हैं। सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए तुम्हें कितने वर्ष व्यतीत करने पड़ते हैं? जरा इसका विचार करो। बिचली या यन्त्र सम्बन्धी ज्ञान के लिये तुम्हें कितने वर्ष बिताने पड़ते हैं? और फिर सारी उम्र उसे अमल में लाते रहना पड़ता हैं।

पुनश्च, इतर विज्ञानों का विषय है, स्थिर वस्तुएँ - ऐसी वस्तुएँ जो हलचल नहीं करतीं। तुम कुर्सी का पृथक्करण कर सकते हो, कुर्सी दूर नहीं भाग जाती। परन्तु यह मनोविज्ञान मन को अपना विषय बनाता है-वह मन, जो सदा चंचल है। ज्यों ही तुम उसका अध्ययन करना चाहते हो, वह भाग जाता है, अभी मन में एक वृत्ति विद्यमान है, फिर दूसरी उदित हो जाती है। इस तरह मन सर्वदा बदलता ही जाता है। उसकी इस चंचलता में ही उसका अध्ययन करना पड़ता है, उसे समझना पड़ता है, उसका आकलन करना पड़ता है, उसको अपने वश में लाना पड़ता है। अतएव देखो, यह शास्त्र कितना अधिक कठिन है। यहाँ कठोर अभ्यास की आवश्यकता है।

लोग मुझसे पूछते हैं कि आप प्रत्यक्ष प्रयोग कर क्यों नहीं सिखलाते? अजी! यह कोई मजाक नहीं है। मैं इस मंच पर खड़े-खड़े व्याख्यान देता हूँ और तुम सुनकर घर चले जाते हो; तुम्हें कोई लाभ नहीं होता, और न मुझे ही। तब तुम कहते हो, "यह सब पाखण्ड है।" ऐसा इसलिए होता है कि तुम्हीं इसे पाखण्ड बनाना चाहते थे।

इस शास्त्र का मुझे बहुत थोड़ा ज्ञान है, परन्तु जो कुछ थोड़ा-बहुत जानता हूँ, उसके लिये तीस साल तक अभ्यास किया है और मैं छ: साल हुए लोगों को वह सिखला रहा हूँ। मुझे तीस साल लगे इसके अभ्यास के लिए। तीस साल की कड़ी कोशिश ! कभी-कभी चौबीस घण्टों में मैं

बीस घण्टे साधना करता रहा हूँ। कभी रात में एक ही घण्टा सोया हूँ। कभी रात-रात भर मैंने प्रयोग किये हैं; कभी-कभी मैं ऐसे स्थानों में रहा हूँ, जहाँ किसी प्रकार का कोई शब्द न था, साँस तक की आवाज न थी। कभी मुझे गुफाओं में रहना पड़ा है। इस बात का तुम विचार करो और फिर भी मुझे बहुत थोडा मालूम है, या कहिये बिलकुल ही नहीं। मैंने कठिनता से इस शास्त्र की मानो किनार भर छू पायी है। परन्तु मैं समझ सकता हूँ कि यह सच है, अपार है और आश्चर्यजनक है।

अब यदि तुममें से कोई इस शास्त्र का सचमुच अध्ययन करना चाहता है, तो उसी प्रकार के निश्चय से आरम्भ करना होगा, जिस निश्चय से वह किसी व्यवसाय का आरम्भ करता है। यही नहीं बल्कि संसार के किसी भी व्यवसाय की अपेक्षा उसे इसमें अधिक दृढ़ निश्चय लगाना होगा।

व्यवसाय के लिए कितने मनोयोग की आवश्यकता होती है और वह व्यवसाय हमसे कितने कड़े श्रम की माँग करता है। यदि बाप.माँ, स्त्री या बच्चा भी मर जाय, तो भी व्यवसाय रुकने का नहीं। चाहे हमारे हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो रहे हों, फिर भी हमें व्यवसाय की जगह पर जाना ही होगा, चाहे व्यवसाय का हर एक घण्टा हमारे लिए यन्त्रणा क्यों न हो। यह व्यवसाय, और हम समझते हैं कि यह ठीक ही है, इसमें कोई अन्याय नहीं है।

यह शास्त्र किसी भी अन्य व्यवसाय से अधिक लगन माँगता है। व्यवसाय में तो अनेक व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु इस मार्ग में बहुत ही थोड़े; क्योंकि यहाँ पर मुख्यत: साधक की मानसिक गठन पर ही सब कुछ अवलम्बित रहता है। जिस प्रकार व्यवसायी, चाहे दौलत जोड़ सके या न जोड़ सके, कुछ कमाई तो जरूर कर लेता है, उसी प्रकार इस शास्त्र के प्रत्येक साधक को कुछ ऐसी झलक अवश्य मिलती है, जिससे उसका विश्वास हो जाता है कि ये बातें सच हैं और ऐसे मनुष्य हो गये हैं, जिन्होंने इन सब का पूर्ण अनुभव कर लिया था।

इस शास्त्र की यह केवल रूपरेखा है। यह शास्त्र स्वत:प्रमाण तथा स्वयंप्रकाश है, और किसी भी अन्य शास्त्र या विज्ञान को अपने से तुलना करने के लिए ललकारता है। दुनिया में पाखण्डी, जादूगर, धोखेबाज अनेक हो गये हैं और विशेषत: इस क्षेत्र में। ऐसा क्यों? इसीलिए कि जो व्यवसाय जितना अधिक लाभप्रद होता है, उसमें उतने ही अधिक पाखण्डी और धोखेबाज होते हैं। परन्तु उस व्यवसाय के अच्छे न होने का यह कोई कारण नहीं। एक बात और बतला देना चाहता हूँ। इस शास्त्र के अनेक वादों सुनना बुद्धि के लिए चाहे बड़ी अच्छी कसरत हो, और आश्चर्यजनक बातें सुनने से चाहे तुम्हें बौद्धिक सन्तोष प्राप्त होता हो, परन्तु अगर सचमुच तुम्हें कुछ सीखने की इच्छा है, तो सिर्फ भाषणों को सुनने से काम न चलेगा। यह व्याख्यानों द्वारा नहीं सिखलाया जा सकता, क्योंकि यह शास्त्र है अनुभूतिनिष्ठ और अनुभूति ही अनुभूति प्रदान कर सकती है। यदि तुममे से सचमुच कोई अध्ययन करना चाहता है, तो उसकी सहायता देने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

जीवन-गठन की साधनाएँ

यदि जगत् की गति क्रम-अवनति की ओर हो, यदि उसका पूर्वावस्था की ओर पुनरावर्तन हो, तो वह हमारी पतनावस्था होती है; और यदि उसकी गति क्रम-विकास की ओर हो तो वह हमारा उत्थान-काल होता है। अत: हमें पूर्वावस्था की ओर गति को नहीं जाने देना चाहिए। सर्वप्रथम तो हमारा शरीर ही हमारे अध्ययन का विषय बनना चाहिए। पर कठिनाई तो यह है कि हम पड़ोसियों को ही सीख देने में अत्यधिक व्यस्त रहा करते हैं।

हमें अपने शरीर से ही प्रारम्भ करना चाहिए। फुफ्फुस, यकृत आदि की गति क्रम-अवनति की ओर है-ये स्वत: विकासोन्मुख नहीं है; इन्हें ज्ञान के क्षेत्र में ले आओ, इन पर नियन्त्रण रखो, ताकि इनका परिचालन तुम्हारी इच्छानुसार हो सके। एक समय था, जब हमारा यकृत पर नियन्त्रण था;हम अपना सारा चर्म उसी प्रकार हिला सकते थे, जैसे एक गाय। मैंने अनेक व्यक्तियों को कठोर अभ्यास द्वारा इस नियन्त्रण को पुन: प्राप्त करते देखा है। एक बार छाप लगी कि मिटती नहीं। अज्ञान के अन्धकार में छिपी हुई उपर्युक्त प्रकार की क्रियाओं को ज्ञान के प्रकाश में ले जाओ। यही हमारी साधना का पहला अंग है, और हमारे सामाजिक कल्याण के लिए इसकी नितान्त आवश्यकता है। दूसरी ओर, केवल चेतन मन का ही सर्वदा अध्ययन करते रहने की आवश्यकता नहीं।

इसके बाद है साधना का दूसरा अंग जिसकी हमारे तथाकथित सामाजिक जीवन में उतनी आवश्यकता नहीं और जो हमें मुक्ति की ओर ले जाता है। इसका प्रत्यक्ष कार्य है आत्मा को मुक्त कर देना, अन्धकार में प्रकाश लाना, मलिनता को हटाना तथा साधन को इस योग्य बना देना कि वह अन्धकार को चीरता हुआ आगे बढ़ निकले। यह ज्ञान से परे की अवस्था – यह आत्मबोध ही हमारे जीवन का लक्ष्य है। जब उस अवस्था की उपलब्धि हो जाती है, तब यही मानव देव-मानव बन जाता है, मुक्त हो जाता है। और उस मन के सम्मुख जिसे सब विषयों से परे जाने का इस प्रकार अभ्यास हो गया है, यह जगत् क्रमश: अपने रहस्य खोलता जाता है; प्रकृति की पुस्तक के पन्ने एक-एक करके पढ़े जाते हैं, जब तक कि इस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती; और तब हम जन्म और मृत्यु की घाटी से उस 'एक' की ओर प्रयाण करते हैं यहाँ जन्म और मृत्यु - किसी का अस्तित्व नहीं है, तब हम सत्य को जान लेते हैं और सत्यस्वरूप बन जाते हैं।

हमें पहले जिस बात की आवश्यकता है, वह है कोलाहलहीन शान्तिमय जीवन। यदि दिन भर मुझे पेट की चिन्ता के लिए दुनिया की खाक छाननी पड़े, तो इस जीवन में कोई भी उच्चतर उपलब्धि मेरे लिए एक कठिन समस्या है। हो सकता है, मैं अगले जन्म में कुछ अधिक अनुकूल परिस्थितियों में जन्म लूँ। पर यदि मैं सचमुच अपनी धुन का पक्का हूँ, तो इसी जन्म में ये ही परिस्थितियाँ परिवर्तित हो जायेंगी। क्या कभी ऐसा हुआ है कि तुम्हें वह चीज न मिली हो जिसे तुम हृदय से चाहते थे? ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। क्योंकि आवश्यकता ही, वासना ही शरीर का निर्माण करती है। वह प्रकाश ही है, जिसने तुम्हारे सिर में मानों दो छेद कर दिये हैं, जिन्हें आँखें कहा जाता है। यदि प्रकाश का अस्तित्व न होता, तो तुम्हारी आँखे भी न रहतीं। वह ध्वनि ही है जिसने कानों का निर्माण किया है। तुम्हारी इन्द्रियों की सृष्टि के पहले से ही ये इन्द्रियगम्य वस्तुएँ विद्यमान हैं।

कतिपय सहस्र वर्षों में, या सम्भव है इससे कुछ पहले ही, हममें शायद ऐसी इन्द्रियों की भी

सृष्टि हो जाय, जिससे हम विद्युत प्रवाह और प्रकृति में होनेवाली अन्य घटनाओं को भी देख सके।

शान्तिमय मन में कोई वासना नहीं रहती। जब तक इच्छाओं की पूर्ति के लिए बाहर कोई सामग्री न हो, इच्छा की उत्पत्ति नहीं होती। बाहर की वह सामग्री शरीर में मानो एक छिद्र कर मन में प्रवेश करने का प्रयत्न करती है। अत:, यदि एक शान्तमय, कोलाहलहीन जीवन के लिए इच्छा उठे, जहाँ सभी कुछ मन के विकास के लिए अनुकूल होगा तो यह निश्चय जानो कि वह अवश्य पूर्ण होगी- यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ। भले ही ऐसे जीवन की प्राप्ति सहस्रों जन्म के बाद हो, पर उसकी प्राप्ति अवश्यमेव होगी। उस इच्छा को बनाये रखो - मिटने न दो - उसकी पूर्ति के लिए प्राणपण से चेष्टा करते रहो। यदि तुम्हारे लिए कोई वस्तु बाहर न रहे, तो तुममें उसके लिए प्रबल इच्छा उत्पन्न हो ही नहीं सकती। पर हाँ, तुमको यह जान लेना चाहिए कि इच्छा-इच्छा में भी भेद होता है।

गुरु ने कहा, "मेरे बच्चे, यदि तुम भगवत्प्राप्ति की इच्छा रखते हो, तो अवश्य ही तुम्हें भगवान् का लाभ होगा।"

शिष्य ने गुरु का मन्तव्य पूर्णतया नहीं समझा। एक दिन दोनों नहाने के लिए एक नदी में गये। गुरु ने शिष्य से कहा,"डुबकी लगाओ" और शिष्य ने डुबकी लगायी। एकदम गुरु ने शिष्य के सिर को पकड़ लिया और उसे पानी में डुबाये रखा। उन्होंने शिष्य को ऊपर नहीं आने दिया। जब वह लड़का ऊपर आने की कोशिश करते-करते थक गया, तब गुरु ने उसे छोड़ दिया और पूछा, "अच्छा, मेरे बच्चे, बताओ तो सही तुम्हें पानी के अन्दर कैसा लग रहा था?"

"ओफ ! एक साँस लेने के लिए मेरा जी निकल रहा था"

"क्या ईश्वर के लिए भी तुम्हारी इच्छा उतनी ही प्रबल है?"

"नहीं गुरुजी।"

"तब ईश्वरप्राप्ति के लिए वैसी ही उत्कट इच्छा रखो, तुम्हें ईश्वर के लिए वैसी ही उत्कट इच्छा रखो, तुम्हें ईश्वर के दर्शन होंगे।"

जिसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते, वह वस्तु हमें प्राप्त होगी ही। यदि हमें उसकी प्राप्ति न हो, तो जीवन दूभर हो उठेगा - जीवनरूपी टिमटिमाता दीपक बुझ जायेगा।

यदि तुम योगी होना चाहते हो, तो तुम्हें स्वतन्त्र होना पड़ेगा, और अपने आपको ऐसे वातावरण में रखना होगा, जहाँ तुम सर्व चिन्ताओं से मुक्त होकर अकेले रह सकते हो। जो आराममय और विलासमय जीवन की इच्छा रखते हुए आत्मानुभति की चाह रखता है, वह उस मूर्ख के समान है, जिसने नदी पार करके के लिए, एक मगरमच्छ को लकड़ी का लठ्टा समझकर पकड़ लिया।

"अरे तुम लोग पहले ईश्वर के राज्य और धर्म की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करो, और शेष ये सब वस्तुएँ तुम्हारे पास अपने आप ही आ जायँगी।"

जो किसी की परवाह नहीं करता, उसी के पास सभी आते हैं। भाग्य एक नखरेबाज स्त्री के समान है; जो उसे चाहता है, उसकी वह परवाह ही नहीं करती; पर जो व्यक्ति उसकी परवाह नहीं करता, उसके चरणों पर वह लोटती रहती है। जिसे धन की कोई कामना नहीं, लक्ष्मी उसी के घर छप्पर फोड़कर आती है। इसी प्रकार नाम-यश भी अयाचक के पास ढेर-के ढेर में आता है, यहाँ तक कि यह सब उसके लिए एक कष्टप्रद बोझा हो जाता है। सदैव स्वामी के पास ही यह सब आता है। गुलाम को कभी कुछ नहीं मिलता।

स्वामी तो वह, जो बिना उन सब के रह सके, जिसका जीवन संसार की क्षुद्र सारहीन वस्तुओं पर अवलम्बित नहीं रहता। एक आदर्श के लिए और केवल उसी एक आदर्श के लिए जीवित रहो उस आदर्श को इतना प्रबल, इतना विशाल एवं महान् होने दो, जिससे मन के अन्दर और कुछ न रहने पाये; मन में अन्य किसी के लिए भी स्थान न रहे, अन्य किसी विषय पर सोचने के लिए समय ही न रहे।

क्या तुमने देखा नहीं किस प्रकार कुछ लोग धनी बनने की वासनारूपी अग्नि में अपनी समस्त शक्ति, समय, बुद्धि, शरीर, यहाँ तक कि अपना सर्वस्व स्वाहा कर देते हैं। उन्हें खाने-पीने तक के लिए फुरसत नहीं मिलती। पक्षियों के कलरव से पूर्व ही उठकर वे बाहर चले जाते हैं और काम में लग जाते हैं। इसी प्रयत्न में उनमें से नब्बे प्रतिशत लोग काल के कराल गाल में प्रविष्ट हो जाते हैं; और शेष लोग यदि पैसा कमाते भी है, तो उसका उपभोग नहीं कर पाते। कैसा मजा है। मैं यह नहीं कहता कि धनवान बनने के लिए प्रयत्न करना बुरा है। यह बहुत ही अद्भुत है, आश्चर्यजनक है।

क्यों, यह क्या दर्शाता है? इससे यही ज्ञान होता है कि हम मुक्ति के लिए उतना ही प्रयत्न कर सकते हैं, उतनी ही शक्ति लगा, सकते हैं, जितना एक व्यक्ति धनोपार्जन के लिए। हम जानते हैं कि मरने के उपरान्त हमें धन इत्यदि सभी कुछ छोड़ जाना पड़ेगा, तिस पर भी देखो, हम इनके लिए कितनी शक्ति खर्च कर देते हैं। अत: हम उन्हीं व्यक्तियों को उस वस्तु की प्राप्ति के लिए, जिसका कभी नाश नहीं होता और जो चिर-काल तक हमारे साथ रहती है, क्या सहस्रगुनी अधिक शक्ति नहीं लगानी चाहिए? क्योंकि हमारे अपने शुभ कर्म, हमारी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ - यह सब हमारे ऐसे साथी हैं, जो हमारे देह-नाश के बाद भी हमारे साथ आते हैं। और शेष सब कुछ तो देह के साथ यहीं पड़ा रह जाता है।

आदर्शोपलब्धि के लिए वास्तविक इच्छा - यही हमारा पहला और एक बड़ा कदम है। इसके बाद अन्य सब कुछ सहज हो जाता है। इस सत्य का आविष्कार भारतीय मन ने किया। वहाँ भारतवर्ष में, सत्य को ढूँढ निकालने में मनुष्य कोई कसर नहीं उठा रखते। पर यहाँ पाश्चात्य देशों में मुश्किल तो यह है कि हरएक बात इतनी सीधी कर दी गयी है। यहाँ का प्रधान लक्ष्य सत्य नहीं, वरन् भौतिक प्रगति है। संघर्ष एक बड़ा पाठ है।

ध्यान रखो, संघर्ष इस जीवन में एक बड़ा लाभ हैं। हम संघर्ष में से होकर ही अग्रसर होते हैं- यदि स्वर्ग के लिए कोई मार्ग है, तो वह नरक में से होकर जाता है। नरक से होकर स्वर्ग - यही सदा का रास्ता है। जब जीवात्मा परिस्थितियों से मुकाबला करते हुए मृत्यु को प्राप्त होता है, जब मार्ग में इस प्रकार उसकी सहस्रों बार मृत्यु होने पर भी वह निर्भीकता से संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता है और बढ़ता जाता है, तब वह महान् शक्तिशाली बन जाता है और उस आदर्श पर हँसता है जिसके लिए वह अभी तक संघर्ष कर रहा था, क्योंकि यह जान लेता है कि वह स्वयं उस आदर्श से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। मैं - स्वयं मेरी आत्मा ही लक्ष्य है, अन्य और कुछ भी नहीं; क्योंकि ऐसा क्या है, जिसके साथ मेरी आत्मा की तुलना की जा सके? सुवर्ण की एक थैली क्या कभी मेरा आदर्श हो सकती है? कदापि नहीं। मेरी आत्मा ही मेरा सर्वोच्च आदर्श है। अपने प्रकृत स्वरुप की अनुभूति ही मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय है।

ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो सम्पूर्णतया बुरी हो। यहाँ शैतान की भी उसी भाँति उपयोगिता है, जैसे कि ईश्वर की, नहीं तो शैतान यहाँ रहता ही नहीं। जैसे मैंने तुमसे कहा ही है, हम नरक में से

होकर ही स्वर्ग की ओर प्रयाण करते हैं। हमारी भूलों की भी यहाँ उपयोगिता है। बढ़े चलो। यदि तुम सोचते हो कि तुमने कोई अनुचित कार्य किया है, तो भी पीछे फिरकर मत देखो। यदि पहले तुमने इन गलतियों को न किया होता, तो क्या तुम विश्वास करते हो कि आज तुम जैसे हो, वैसे कभी हो सकते? अत: अपनी भूलों को आशीर्वाद दो। वे अदृश्य देवदूतों के समान रही हैं। तुम धन्य हो, दु:ख ! धन्य हो सुख ! तुम्हारे मत्थे क्या आता है इसकी परवाह न करो। आदर्श को पकड़े रहो। आगे बढ़ते चलो। छोटी-छोटी बातों और भूलों पर ध्यान न दो हमारी इस रण-भूमि में भूलों की धूल तो उड़ेगी ही। जो इतने नाजुक हैं कि धूल सहन नहीं कर सकते, उन्हें कतार से बाहर चले जाने दो।

अत: संघर्ष के लिए यह प्रबल निश्चय - ऐहिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए हम जितना प्रयत्न करते हैं, उससे सौगुना अधिक प्रबल निश्चय हमारी प्रथम महान् साधना है।

और फिर उसके साथ ध्यान भी होना चाहिए। ध्यान ही एकमात्र असल वस्तु है। ध्यान करो। ध्यान ही सब से महत्त्वपूर्ण है। मन की यह ध्यानावस्था आध्यात्मिक जीवन के निकटतम है। सर्व जड़ पदार्थों से मुक्त होकर आत्मा का अपने बारे में चिन्तन - आत्मा का यह अद्भुत संस्पर्श - यही हमारे दैनिक जीवन में एकमात्र ऐसा क्षण है, जब हम सांसरिकता से सम्पूर्ण पृथक् रहते हैं।

शरीर हमारा शत्रु है और मित्र भी। तुममें से कौन दु:ख का दृश्य सहन कर सकता है? और यदि केवल किसी चित्रकारी में तुम दु:ख का दृश्य देखो, तो तुममें से कौन उसे सहन नहीं कर सकता? इसका कारण क्या है, जानते हो? हम चित्र से अपने को एकरूप नहीं करते, क्योंकि चित्र असत् है; अवास्तविक है; हम जानते हैं कि वह एक चित्रकारी मात्र है; हम उसके कृपापात्र नहीं बन सकते, वह हमें चोट नहीं पहुँचा सकती। यही नहीं, यदि परदे पर एक भयानक दु:ख चित्रित किया गया हो, तो शायद हम उसका मजा भी ले सकते हैं। हम चित्रकार की कला की बड़ाई करते हैं, हम उसकी असाधारण प्रतिभा पर आश्चर्यचकित हो जाते हैं, यह जानकर भी कि चित्रित दृश्य भयंकरता की कठोरतम अभिव्यक्ति है। इसका रहस्य क्या है, जानते हो? अनासक्ति ही इसका रहस्य है। अतएव केवल साक्षी बनकर रहो।

जब तक 'मै साक्षी हूँ' इस भाव तक तुम नहीं पहुँचते, तब तक प्राणायाम अथना योग की भौतिक क्रियाएँ इत्यादि, किसी काम की नहीं। यदि खूनी हाथ तुम्हारी गर्दन पकड़ ले तो कहो, "मैं साक्षी हूँ। मैं साक्षी हूँ।" कहो, "मैं आत्मा हूँ। कोई भी बाहरी वस्तु मुझे स्पर्श नहीं कर सकती।"

यदि मन में बुरे विचारे उठें तो बार-बार यही दुहराओ, यह कह-कहकर उनके सिर पर हथौड़े की चोट करो कि "मैं आत्मा हूँ। मैं साक्षी हूँ। मैं नित्य शुभ और कल्याणस्वरूप हूँ। कोई कारण नहीं है जो मैं भुगतूँ, मेरे सब कर्मों का अन्त हो चुका है, मै साक्षीस्वरुप हूँ। मैं अपनी चित्रशाला में हूँ यह जगत् मेरा अजायबघर है, मैं इन क्रमागत चित्रकारियों को केवल देखता जा रहा हूँ। वे सभी चित्र सुन्दर हैं- भले हों या बुरे। मैं अद्भुत कौशल्य देख रहा हूँ; किन्तु यह समस्त एक है। उस महान् चित्रकार परमात्मा की अनन्त अर्चियाँ।"

सचमुच, किसी का अस्तित्व नहीं है - न संकल्प है, न विकल्प। वे प्रभु ही सब कुछ हैं। ईश्वर - चित्-शक्ति – जगदम्बा लीला कर रही हैं और हम सब गुड़ियों जैसे हैं, उनकी लीला में सहायक मात्र हैं। यहाँ वे किसी को कभी भिखारी के रूप में सजाती हैं, और कभी राजा के रूप में तीसरे क्षण उसे साधू का रूप दे देती हैं और कुछ ही देर बाद शैतान की वेश-भूषा पहना देती हैं। हम जगन्माता को उनके खेल में सहायता देने के लिए भिन्न-भिन्न वेश धारण कर रहे हैं।

जब तक बच्चा खेलता रहता है, तब तक माँ के बुलाने पर भी नहीं जाता। पर जब उसका खेलना समाप्त हो जाता है तब वह सीधे माँ के पास दौड़ जाता है, फिर 'ना' नहीं कहता। इसी प्रकार हमारे जीवन में भी ऐसे क्षण आते हैं। और तब हम जगन्माता की ओर दौड़ जाना चाहते हैं। तब, हमारी आँखों में यहाँ के अपने कार्यकलापों का कोई मूल्य नहीं रह जाता; नर-नारी-बच्चे, धन-नाम-यश, जीवन के हर्ष औऱ महत्त्व, दण्ड औऱ पुरस्कार - इनका कुछ भी अस्तित्व नहीं रह जाता, औऱ समस्त जीवन उड़ते दृश्य सा जान पडता है। हम केवल देखते हैं अनन्त ताल-लहरी को किसी अज्ञात दिशा में बहते हुए - बिना किसी छोर के, बिना किसी उद्देश्य के। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि हमारा खेल हो चुका।

लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के मार्ग

यदि सभी मनुष्य एक ही धर्म, उपासना की एक ही सार्वजनीन पद्धति और नैतिकता के एक ही आदर्श को स्वीकार कर लें, तो संसार के लिए यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात होगी। इससे सभी धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति को प्राणान्तक आघात पहुँचेगा। अत: हमें चाहिए कि अच्छे या बुरे उपायों द्वारा दूसरों को अपने धर्म और सत्य के उच्चतम आदर्श आदर्श पर लाने चेष्टा करने के बदले, हम उनकी सब बाधाएँ हटा देने का प्रयत्न करें, जो उनके निजी धर्म के उच्चतम आदर्श के अनुसार विकास में रोडे अटकाती हैं, और इस तरह उन लोगों की चेष्टाएँ विफल कर दें, जो एक सार्वजनीन धर्म की स्थापना का प्रयत्न करते हैं।

समस्त मानवजाति का, समस्त धर्मों का चरम लक्ष्य एक ही है, और वह है भगवान् से पुनर्मिलन, अथवा दूसरे शब्दों में उस ईश्वरीय स्वरुप की प्राप्ति जो प्रत्येक मनुष्य का प्रकृत स्वभाव है। परन्तु यद्यपि लक्ष्य एक है, तो भी लोगों के विभिन्न स्वभावों के अनुसार उसकी प्राप्ति के साधन भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के साधन - इन दोनों को मिलाकर 'योग' कहा जाता है। 'योग' शब्द संस्कृत के उसी धातु से व्युत्पन्न हुआ है, जिससे अँग्रेजी शब्द 'योक' (yoke) - जिसका अर्थ है, 'जोड़ना'। अर्थात् अपने को उस परमात्मा से जोड़ना जो हमारा प्रकृत स्वरूप है। इस प्रकार के योग अथवा मिलन के साधन कई हैं पर उनमें मुख्य हैं कर्म-योग, भक्ति-योग, राज-योग, और ज्ञान-योग।

प्रत्येक मनुष्य का विकास उसके अपने स्वभावानुसार ही होना चाहिए। जिस प्रकार हर एक विज्ञानशास्त्र के अपने अलग-अलग तरीके होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक धर्म में भी हैं। धर्म के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के तरीकों या साधनों को हम योग कहते हैं। विभिन्न प्रकृतियों और स्वभावों के अनुसार योग के भी विभिन्न प्रकार हैं। उनके निम्नलिखित चार विभाग हैं-

(1) कर्म-योग - इसके अनुसार मनुष्य अपने कर्म और कर्तव्य के द्वारा अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति करता है।

(2) भक्ति-योग - इसके अनुसार अपने ईश्वरीय स्वरुप की अनुभूति सगुण ईश्वर के प्रति भक्ति और प्रेम के द्वारा होती है।

(3) राज-योग - इसके अनुसार मनुष्य अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति मन:संयम के द्वारा करता है।

(4) ज्ञान-योग - इसके अनुसार अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति ज्ञान के द्वारा होती है। ये सब एक ही केन्द्र – भगवान् - की ओर ले जानेवाले विभिन्न मार्ग हैं। वास्तव में, धर्ममतों की विभिन्नता लाभदायक है, क्योंकि मनुष्य को धार्मिक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा वे सभी देते हैं और इस कारण सभी अच्छे हैं। जितने ही अधिक सम्प्रदाय होते हैं मनुष्य की भगवद्भावना को सफलतापूर्वक जागृत करने के उतने ही अधिक सुयोग मिलते हैं।

0 0 0